भारतीय स्त्रियाँ और कर्मठता

जब हम स्त्रियों, खासकर भारतीय स्त्रियों के संदर्भ में कर्मठता और मेहनतकशी की बात उठाते हैं तो मात्र एक दो प्रतिशत के घेरे में स्थित शहरी स्त्रियों पर केन्द्रित करके बात खत्म नहीं की जा सकती, बल्कि वास्तविक धरातल पर जुड़े तथ्यों को उजागर करते हुए ही इस संदर्भ को संपूर्णता में आंका जा सकता है। हमें अपनी बात को दिल्ली–मुंबई–कोलकाता से आगे बढ़ाकर पुणे, इंदौर और गुवाहाटी तक ले जाना होगा और उससे भी आगे नागपुर, कानपुर आसनसोल की सीमाओं को लांघते हुए कटिहार, बंगाईगांव, चक्रधरपुर, सीतामढ़ी, अल्मोड़ा तथा पुरुलिया तक पहुंचना होगा– तब जाकर कहीं भारतीय स्त्रियों की कर्मठता वाले तत्व के बारे में पूरा न सही थोड़ा बहुत हम समझ पाएंगे, और तभी शायद इन शब्द रूपों की महिमा अपने आयामों सहित हमारे सामने प्रकट हो पाएगी।

स्त्रियों की कठिनता (और व्यस्तता) भरे जीवनशैली की बात उठने पर सबसे पहले जो बिंब मन में उठता है वह नैनीताल (पहाड़ों) के बिंबों से जुड़ा हुआ है– झील के ऐन सामने ऊंचाई पर बने टैरेस पर खड़े होकर बातचीत करने के दौरान पहाड़ के जीवन की कठिनाईयों की बात उठी थी और अमर उजाला अखबार से संबंधित एक पत्रकार ने अपनी नानी दादी के रोजमर्रा के जीवन के बारे में बताते हुए कहा था कि पहाड़ों पर लकड़ी, पानी वगैरह की व्यवस्था करने के बीच कई स्त्रियों के तलुवों की निचली सतह धीरे–धीरे कठोर पड़कर एक मोटी तह के रूप में बदल जाया करती है और ऐसा महसूस होता है कि एक चपटी तह वाले जूते की तली हर समय तलवे के नीचे कड़े मांस के रूप में चिपकी हुई हो – यह बयान मन को झकझोर देने वाला था और इस भोगे हुए सच की उपस्थिति की बात आज भी किसी भी शहरी स्त्री की रूह को कंपाने के लिए काफी है, जिसने जीवन भर बिना चप्पल–जूते के घर से बाहर पांव रखने की सोची भी न हो।

यह तो मात्र एक उदाहरण जैसा है उन स्त्रियों के कठिन जीवनशैली का , जिनके बारे में कभी विस्तार में बात ही नहीं की जाती है, बस एक पंक्ति में कह दिया जाता है कि गांवों में, कस्बों में स्त्रियां बड़ा ही कठिन जीवन जीती हैं। कोई छोटी सी फिल्म कभी इस साधारण कही जाने वाली असाधारण घटना पर नहीं बनाई जाती कि जब मिट्टी के घर के फर्श पर मात्र कथरी या या चटाई पर दो चार महीने के बच्चे को सुलाकर उसकी माता कामकाज करती रहती है, आंगन से बाहर और छोटे खेत से बड़ी पगडंडी पर चलती फिरती रहती है तो उस पूरे समय वह कैसे एक अव्यक्त भय तले घिरी हुई रहती है कि कभी भी सांप निकल आने वाले उस घर में उसका बच्चा असुरक्षित सा जमीन पर सोया हुआ है। अपने नन्हें बच्चे के लिए माँ का मन लगातार आशंकाओं तले घिरा रहा करता है लेकिन नियत कार्य तो उसे निबटाने ही पड़ते हैं ।

हमारे समाज ने, हम सभी ने इन "छोटी–छोटी" साधारण घटनाओं को " असाधारण" न मानते हुए कभी इन पर ज्यादा ध्यान देना उचित नहीं समझा है, पत्रकारों, टी.वी. चैनल वालों, छोटी बजट के फिल्मकारों ने भी ऐसी मामूली बातों को बार–बार उछालना नहीं चाहा है, कि एक बड़ी सी सामाजिक आर्थिक समस्या के अंतर्गुम्फन पर लोगों की निगाह जाए और कोई रास्ता समाधान की दिशा में निकल आए .

इसी तरह अनेकानेक जरूरी संवेदनाओं को अनदेखी करते हुए, हम और निर्मम और ज्यादा निरंकुश समाज के निर्माण में लगे हुए हैं और हमारे इस असंवेदनशील निष्ठुर समाज के कारण विदेशी समाजसेवी लोग हमें बड़ी ही हिकारत से देखते हैं- यह भी सच है।

पिछले सत्तर सालों में बहुत कुछ भूचाल की तर्ज पर सकारात्मक बदलाव आया है– लोग खूब अच्छे कपड़े पहनने लगे हैं, महंगी कारों में चलने लगे है, मोबाइल–कंप्यूटर–मेट्रो से लेकर हवाई यात्राओं का आनन्द उठाने लगे हैं। मध्यम वर्ग वाले भी अमेरिका, इंग्लैंड सिंगापुर वगैरह घूम आते हैं। लेकिन गरीब

कर्मठ स्त्रियों का जीवन ? गांवों का रहन–सहन , उनके मिट्टी के घर , पानी की व्यवस्था वगैरह ? वह तो वैसी ही है या और भी बदत्तर ही हुई है। हां, औरतों की मेहनतकशी लगातार बनी हुई है क्योंकि उनके अंदर दया, कोमलता, हिम्मत वगैरह कुछ ज्यादा मात्रा में मौजूद रहा करती है और लाख थकी होने के बावजूद वे बच्चे को दूध पिलाने में कोताही नहीं कर सकतीं , न ही घर के लोगों को खाना बनाकर देने में पीछे हटतीं हैं ।इसी तरह यदि अगर एक साधारण शहरी बाई की दिनचर्या पर नजर डाली जाए तो हम पाते हैं कि हमारी कामवाली सुबह चार–पांच बजे उठती है, पानी वगैरह भरकर घर का खाना बनाकर आपके-हमारे घर आती हैं , वहां झाड़ू–पोंछा वगैरह करके , एक बजे तक वापस अपने घर जाती है .फिर से चार बजे आकर साफ–सफाई करती है और फिर वापस अपने घर जाकर रात का खाना बनाती है, बच्चों को सुलाती है। और उनकी यह दिनचर्या तीसों दिन चलती है, पूरे वर्ष। कभी कोई टी.वी. पत्रकार उनका इंटरव्यू लेता नजर नहीं आता कि वर्ष में वे कितने घंटे खटा करती हैं क्या उनकी कर्मठता कभी भविष्य में मापी जायगी ? शायद नहीं ।

इस तरह के अनेक तथ्य और यथार्थ है पूरे भारत में, जिनके बारे में न तो हम ठीक से जानते हैं, न ही उन पर कभी बात करते हैं या बात करना चाहते हैं, समाधान के बारे में सोचना तो जैसे किसी और का काम हो।

लेकिन भारतीय स्त्रियों की मेहनतकशी के बारे में समग्रता से विचार करना जरूरी है। वास्तव में हमारी जो जीवनशैली है, परंपराएं और रहन–सहन है, उनके बीच स्त्रियों को व्यस्तता से भरपूर रूटीन के बीच लगातार बने रहने को देखना हमारी आदत सी बन गई है . मानों महिलाएं बनी ही हैं लगातार खटने के लिए, घंटो–घंटा काम करते हुए दूसरों का ख्याल रखने के लिए।

लगातार खटते रहना मात्र अनपढ़ या गांव की स्त्रियों का रूटीन नहीं है बल्कि कई बार अच्छे–अच्छे घरों में भी स्त्रियों के पास अपना कह सकने लायक पूरे दिन में एक साबुत घंटा भी नहीं हुआ करता है, यहां पर अच्छे खाते–पीते पैसे वाले परिवार की बी.ए. पास बहू के दिनचर्या से संबंधित बात याद आती है, जो आज से तैंतीस वर्ष पहले ब्याहकर ससुराल आईं थीं। तब से अब तक वे दिनभर में कम–से–कम दस घंटे कार्यरत रहा करती हैं, ननदें ब्याहकर अपने घर चलीं गईं , देवर नौकरी करने गए और अब तो बच्चे भी अपने पैरों पर खड़े हो गए हैं। लेकिन अभी भी पति और सास को चाय देने से लेकर पूरा समय परिवार पर ही न्यौछावर कर देने की उनकी दिनचर्या बनी हुई है। जबकि घर में नौकर–दाई–ड्राईवर सभी हैं। आश्चर्यजनक यह है कि इतने वर्षों तक इतना ज्यादा समय जो उन्होंने घर को दिया इस कारण देवर–देवरानी या सास–ननद उन्हें न कोई विशेष महत्व देते हैं न ही अनुगृहित महसूस करते हैं .... मानों एक स्त्री के जीवन के सभी घंटे दूसरों के लिए ही तो नियत हुआ करते हैं ! – लेकिन अब इस सोच को बदल डालना होगा। हालांकि इसमें संदेह नही कि इस अप्रचलित व्यवहार को धरातल पर लाना काफी कठिन साबित होगा।

ऐसे में नेल्सन फर्म (Nielson Firm) के द्वारा दिए आंकड़ों को उद्धृत करना जरूरी लगता है कि भारत की सत्तासी प्रतिशत (87%) महिलाएं हमेशा तनाव के बीच रहती हैं और बेरासी प्रतिशत (82%) महिलाओं के पास आराम करने का समय नहीं है। यह सर्वे मानों हमें समग्रता में हमारे प्रचलित व्यवहारों के लिए शर्मिंदा होने के लिए प्रेरित करता है।

जिस देश में कुछ सैकड़ा स्त्रियों को छोड़कर बाकि सभी महिलाएं कहीं न कहीं अलग–अलग स्तर पर एक तरह से एक्सप्लायटेशन (शोषण) की शिकार हैं, ऐसे देश में हम क्या याद करें कोपेनहेगन (1910) के सम्मेलन में महिला दिवस को अंतरराष्ट्रीय दर्जा दिए जाने की बात और अमेरिका में ग्रेगेरियन कलैंडर

की बदौलत आठ (8) मार्च को महिला दिवस तय करने की बात। अभी भारत में सच के "महिला दिवस" के आने में समय है।

बड़े ही अफसोस की बात है कि व्यावहारिक स्तर पर हम विदेशों से कुछ भी ठोस और सकारात्मक, नहीं सीख पाए हैं। न उनके समाज सेवा का तत्व, न ही मनुष्य का मनुष्य के लिए संवेदनशील , दया भाव, . समाज ने, हमने मदर टेरेसा से भी बहुत कम सीखा है। यहां अपने देश में बहुत से व्यवहारों को को मूल से बदल डालने की जरूरत है क्योंकि यहां तो पेंच के अंदर पेंच है, इस देश में स्त्रियों का जीवन अपने–आप में सम्मानित, स्वाबलंबी 'व्यक्ति' का जीवन नहीं बन पाया है। ऐसे मे स्त्रियों को ही आगे बढ़कर एक अलग स्तर पर कमान संभालनी होगी, एक स्त्री को आगे बढ़कर दूसरी स्त्री के पक्ष में बोलना होगा, अनपढ़ स्त्रियों को एकजान होकर पढ़ाना होगा, उन्हें सक्षम बनने में सहायक बनना होगा। उन्हें अपनी रक्षा करने का तत्व, सही मायनो में स्वाबलंबी हो जाने का मतलब बताना पड़ेगा।

मतलब कि एक अलग किस्म की कौमी एकता को आकार देना होगा। यहां पंजाबियों के व्यवहार के सकारात्मक पहलू को इंगित करना उचित लगता है– देखा जाता है कि एक पंजाबी अगर किसी दूसरे पंजाबी या सरदार को भीख मांगते हुए देख लें तो वे तुरंत उसकी कुहनी पकड़कर उठा देते हैं– "चल, तुझे मैं काम दूंगा, रोटी मिल जाएगी।" तो इसी तर्ज पर औरतों को आगे बढ़कर दूसरी स्त्रियों की सहायता करने का प्रण उठाना होगा, चाहे इसके लिए उन्हें जो पापड़ बेलने पड़े।

स्त्री को स्त्री के बारे में पूरी संवेदना, पूरी ईमानदारी पूर्वक सोचने को अपना प्रथम कर्तव्य मान लेना चाहिए, और पूरे मन से इस काम में जुड़ जाना चाहिए, क्योंकि यह जिम्मेवारी वाकई समस्त स्त्रियों की ही है, जिसे उन्हें ही पूरा करना है। समस्त स्त्रियों को इस बारे में एक साथ विचार करना चाहिए।

तब जाकर हमारा समाज विश्व स्तर पर जवाब दे पाएगा कि यहां अनदेखा शोषण अब बंद होने की ओर अग्रसर है और कर्मठता अपने सकारात्मक पहलू को और आगे सही ढंग से बढ़ानेवाली है। तभी हमारी जागरूकता स्वयं को सच में प्रकट कर पाएगी।

इला कुमार

ilakumar2002@yahoo.co.in

मोबाइल–8527227336